महावीरकी धर्म-देशना

महावीरका जन्म

आजसे २५५१ वर्ष पहले लोकवन्द्य महावीरने विश्वके लिए स्पृहणीय भारतवर्षके अत्यन्त रमणीक पुण्य-प्रदेश विदेहदेश (बिहार प्रान्त) के 'कुण्डपुर' नगरमें जन्म लिया था। 'कुण्डपुर' विदेहकी राजधानी वैशाली (वर्तमान वसाढ़) के निकट बसा हुआ था और उस समय एक सुन्दर एवं स्वतन्त्र गणसत्तात्मक राज्य-के रूपमें अवस्थित था। इसके शासक सिद्धार्थ नरेश थे, जो लिच्छवी ज्ञातृवंशी थे और बड़े न्याय-नीति-कुशल एवं प्रजावत्सल थे। इनकी शासन-व्यवस्था अहिंसा और गणतंत्र (प्रजातंत्र) के सिद्धान्तोंके आधारपर चलती थी। ये उस समयके नौ लिच्छवि (वज्जि) गणोंमें एक थे और उनमें इनका अच्छा सम्मान तथा आदर था। सिद्धार्थ भी उन्हें इसी तरह सम्मान देते थे। इसीसे लिच्छवी गणोंके बारेमें उनके पारस्परिक, प्रेम और संगठनको बतलाते हुए बौद्धोंके दीघनिकाय-अट्ठकथा आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें कहा गया है कि 'यदि कोई लिच्छवि बीमार होता तो सब लिच्छवि उसे देखने आते, एकके घर उत्सव होता तो उसमें सब सम्मि-लित होते, तथा यदि उनके नगरमें कोई साधु-सन्त आता तो उसका स्वागत करते थे।' इससे मालूम होता है कि अहिंसाके परम पुजारी नृप सिद्धार्थके सूक्ष्म अहिंसक आचरणका कितना अधिक प्रभाव था? जो साथी नरेश जैन धर्मके उपासक नहीं थे वे भी सिद्धार्थकी अहिंसा-नीतिका समर्थन करते थे और परस्पर भ्रातृत्व-पूर्ण समानताका आदर्श उपस्थित करते थे।

सिद्धार्थके इन्हीं समभाव, प्रेम, संगठन, प्रभावादि गुणोंसे आकृष्ट होकर वैशालीके (जो विदेह देशकी तत्कालीन सुन्दर राजधानी तथा लिच्छवि नरेशोंके प्रजातंत्रकी प्रवृत्तियोंकी केन्द्र एवं गौरवपूर्ण नगरी थी) प्रभावशाली नरेश चेटकने अपनी गुणवती राजकुमारी त्रिशलाका विवाह उनके साथ कर दिया था। त्रिशला चेटककी सबसे प्यारी पुत्री थी, इसलिए चेटक उन्हे 'प्रियकारिणी' भी कहा करते थे। त्रिशला अपने प्रभावशाली सुयोग्य पिताकी सुयोग्य पुत्री होनेके कारण पैतृकगुणोंसे सम्पन्न तथा उदारता, दया, विनय, शीलादि गुणोंसे भी युक्त थी।

इसी भाग्यशाली दम्पति—त्रिशला और सिद्धार्थ—को लोकवन्द्य महावीरको जन्म देनेका अचिन्त्य सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस दिन महावीरका जन्म हुआ वह चैत सुदी तेरसका पावन दिवस था।

महावीरके जन्म लेते ही सिद्धार्थ और उनके परिवारने पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें खूब खुशियाँ मनाईं। गरीबोंको भरपूर धन-धान्य आदि दिया और सबकी मनोकामनाएँ पूरी कीं। तथा तरह-तरहके गायन-वादित्रादि करवाये। सिद्धार्थके कुटुम्बी जनों, समशील मित्रनरेशों, रिश्तेदारों और प्रजाजनोंने भी उन्हें बधाइयाँ भेजीं, खुशियाँ मनाईं और याचकोंको दानादि दिया।

महावीर बाल्यावस्थामें ही विशिष्ट ज्ञानवान् और अद्वितीय बुद्धिमान् थे। बड़ी-से-बड़ी शंकाका समा-धान कर देते थे। साधु-सन्त भी अपनी शंकाएँ पूछने आते थे। इसीलिए लोगोंने उन्हें सन्मति कहना शुरू कर दिया और इस तरह वर्धमानका लोकमें एक 'सन्मति' नाम भी प्रसिद्ध हो गया। वह बड़े वीर भी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयंकर आपदाओंसे भी नहीं घबड़ाते थे, किन्तु उनका साहसपूर्वक सामना करते थे। अतः उनके साथी उन्हें वीर और अतिवीर भी कहते थे।

महावीरका वैराग्य

महावीर इस तरह बाल्यावस्थाको अतिक्रान्त कर धीरे-धीरे कुमारावस्थाको प्राप्त हुए और कुमारावस्थाको भी छोड़कर वे पूरे ३० वर्षके युवा हो गये। अब उनके माता-पिताने उनके सामने विवाहका प्रस्ताव रखा। किंतु महावीर तो महावीर ही थे। उस समय जनसाधारणकी जो दुर्दशा थी उसे देखकर उन्हें असह्य पीड़ा हो रही थी। उस समयकी अज्ञानमय स्थितिको देखकर उनकी आत्मा सिहर उठी थी और हृदय दयासे भर आया था। अतएव उनके हृदयमें पूर्णरूपसे वैराग्य समा चुका था। उन्होंने सोचा—'इस समय देशकी स्थिति धार्मिक दृष्टिसे बड़ी खराब है, धर्मके नामपर अधर्म हो रहा है। यज्ञोंमें पशुओंकी बलि दी जा रही है और उसे धर्म कहा जा रहा है। कहीं अश्वमेध हो रहा है तो कहीं अजमेध हो रहा है। पशुओंकी तो बात ही क्या, नरों (मनुष्यों) का भी यज्ञ करनेके लिए, वेदोंके सूक्त बताकर जनताको प्रोत्साहित किया जाता है और कितने ही लोग नरमेध यज्ञ भी कर रहे हैं। इस तरह जहाँ देखो वहाँ हिंसाका बोल-बाला और भीषणकाण्ड मचा हुआ है। सारी पृथ्वी खूनसे लथपथ हो रही है। इसके अतिरिक्त स्त्री, शूद्र और पतितजनोंके साथ उस समय जो दुर्व्यवहार हो रहा है वह भी चरमसीमा पर पहुँच चुका है। स्त्री और शूद्र वेदादि शास्त्र नहीं पढ़ सकते। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' जैसे निषेधपरक वेदादिवाक्योंकी दुहाई दी जाती है और इस तरह उन्हें ज्ञानसे वंचित रखा जा रहा है। शूद्रके साथ संभाषण, उसका अन्नभक्षण और उसके साथ सभी प्रकारका व्यवहार बन्द कर रखा है और यदि कोई करता है तो उसे कड़े-से-कड़ा दण्ड भोगना पड़ता है। पतितोंकी तो हालत ही मत पूछिये। यदि किसी से अज्ञानवतावश या भूलसे कोई अपराध बन गया तो उसे जाति, धर्म और तमाम उत्तम बातोंसे च्युत करके बहिष्कृत कर दिया जाता है—उनके उद्धारका कोई रास्ता ही नहीं है। यह भी नहीं सोचा जाता कि मनुष्य मनुष्य है, देवता नहीं। उससे गलतियाँ हो सकती हैं और उनका सुधार भी हो सकता है।

महावीर इस अज्ञानमय स्थितिको देखकर खिन्न हो उठे, उनकी आत्मा सिहर उठी और हृदय दयासे भर आया। वे सोचने लगे कि 'यदि यह स्थिति कुछ समय और रही तो अहिंसक और आध्यात्मिक ऋषियोंकी यह पवित्र भारतभूमि नरककुण्ड बन जायगी और मानव दानव हो जायगा। जिस भारतभूमिके मस्तकको ऋषभदेव, राम और अरिष्टनेमि—जैसे अहिंसक महापुरुषोंने ऊँचा किया और अपने कार्योंसे उसे पावन, बनाया उसके माथेपर हिंसाका वह भीषण कलंक लगेगा जो धुल न सकेगा। इस हिंसा और जड़ताको शीघ्र ही दूर करना चाहिए। यद्यपि राजकीय दण्ड-विधान—आदेशसे यह बहुत कुछ दूर हो सकती है, पर उसका असर लोगोंके शरीरपर ही पड़ेगा—हृदय एवं आत्मा पर नहीं। आत्मा पर असर डालनेके लिए तो अन्दरकी आवाज—उपदेश ही होना चाहिए और वह उपदेश पूर्ण सफल एवं कल्याणप्रद तभी हो सकता है जब मैं स्वयं पूर्ण अहिंसाकी प्रतिष्ठा कर लूँ। इसलिए अब मेरा घरमें रहना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। घरमें रहकर सुखोपभोग करना और अहिंसाकी पूर्ण साधना करना दोनों बातें सम्भव नहीं हैं।' यह सोचकर उन्होंने घर छोड़नेका निश्चय कर लिया।

उनके इस निश्चयको जानकर माता त्रिशला, पिता सिद्धार्थ और सभी प्रियजन अवाक् रह गये, परन्तु उनकी दृढ़ताको देखकर उन्हें संसारके कल्याणके मार्गसे रोकना उचित नहीं समझा और सबने उन्हें उसके लिए अनुमति दे दी। संसार-भीरु सभ्यजनोंने भी उनके इस लोकोत्तर कार्यकी प्रशंसा की और गुणानुवाद किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीरकी निर्ग्रन्थ-दीक्षा

राजकुमार महावीर सब तरहके सुखों और राज्यका त्यागकर निर्ग्रन्थ-अचेल हो वन-वनमें, पहाड़ोंकी गुफाओं और वृक्षोंकी कोटरोंमें समाधि लगाकर अहिंसाकी साधना करने लगे। काम-क्रोध, राग-द्वेष, मोह-माया, छल-ईर्ष्या आदि आत्माके अन्तरंग शत्रुओंपर विजय पाने लगे। वे जो कायक्लेशादि बाह्य तप तपते थे वह अन्तरंगकी ज्ञानादि शक्तियोंको विकसित व पुष्ट करनेके लिए करते थे। उनपर जो विघ्न-बाधाएँ और उपसर्ग आते थे उन्हें वे वीरताके साथ सहते थे। इस प्रकार लगातार बारह वर्ष तक मौन-पूर्वक तपश्चरण करनेके पश्चात् उन्होंने कर्मकलंकको नाशकर अर्हत अर्थात् 'जीवन्मुक्त' अवस्था प्राप्त की। आत्माके विकासकी सबसे ऊँची अवस्था संसार दशामें यही 'अर्हत् अवस्था' है जो लोकपूज्य और लोकके लिए स्पृहणीय है। बौद्धग्रन्थोंमें इसीको 'अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध' कहा है।

उनका उपदेश

इस प्रकार महावीरने अपने उद्देश्यानुसार आत्मामें अहिंसाकी पूर्ण प्रतिष्ठा कर ली, समस्त जीवों पर उनका समभाव हो गया—उनकी दृष्टिमें न कोई शत्रु रहा और न कोई मित्र। सर्प-नेवला, सिंह-गाय जैसे जाति-विरोधी जीव भी उनके सान्निध्यमें आकर अपने वैर-विरोधको भूल गये। वातावरणमें अपूर्व शान्ति आ गई। महावीरके इस स्वाभाविक आत्मिक प्रभावसे आकृष्ट होकर लोग स्वयमेव उनके पास आने लगे। महावीरने उचित अवसर और समय देखकर लोगोंको अहिंसाका उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। 'अहिंसा परमो धर्मः' कह कर अहिंसाको परमधर्म और हिंसाको अधर्म बतलाया। यज्ञोंमें होनेवाली पशुबलिको अधर्म कहा और उसका अनुभव तथा युक्तियों द्वारा तीव्र विरोध किया। जगह-जगह जाकर विशाल सभाएँ करके उसकी बुराइयाँ बतलाईं और अहिंसाके अपरिमित लाभ बतलाये। इस तरह लगातार तीस वर्ष तक उन्होंने अहिंसाका प्रभावशाली प्रचार किया, जिसका यज्ञोंकी हिंसापर इतना प्रभाव पड़ा कि पशु-यज्ञके स्थानपर शान्तियज्ञ, ब्रह्मयज्ञ आदि अहिंसक यज्ञोंका प्रतिपादन होने लगा और यज्ञमें पिष्ट पशु (आटेके पशु) का विधान किया जाने लगा। इस बातको लोकमान्य तिलक जैसे उच्च कोटिके विचारक विद्वानोंने भी स्वीकार किया है।

पशुजातिकी रक्षा और धर्मान्धताके निराकरणका कार्य करनेके साथ ही महावीरने हीनों, पतितजनों तथा स्त्रियोंके उद्धारका भी कार्य किया। 'प्रत्येक योग्य प्राणी धर्म धारण कर सकता है और अपने आत्माका कल्याण कर सकता है' इस उदार घोषणाके साथ उन्हें ऊँचे उठ सकनेका आश्वासन, बल और साहस दिया। महावीरके संघमें पापीसे पापी भी सम्मिलित हो सकते थे और उन्हें धर्म धारणकी अनुज्ञा थी। उनका स्पष्ट उपदेश था कि 'पापसे घृणा करो, पापीसे नहीं' और इसीलिए उनके संघका उस समय जो विशाल रूप था वह तत्कालीन अन्य संघोंमें कम मिलता था। ज्येष्ठा और अंजनचोर जैसे पापियोंका उद्धार महावीरके उदारधर्मने किया था। इन्हीं सब बातोंसे महान् आचार्य स्वामी समन्तभद्रने महावीरके शासन (तीर्थ—धर्म) को 'सर्वोदय तीर्थ' सबका उदय करनेवाला कहा है। उनके धर्मकी यह सबसे बड़ी विशेषता है।

महावीरने अपने उपदेशोंमें जिन तत्त्वज्ञानपूर्ण सिद्धान्तोंका प्रतिपादन एवं प्रकाशन किया उन पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है :—

१. सर्वज्ञ (परमात्म) वाद—जहाँ अन्य धर्मोंमें जीवको सदैव ईश्वरका दास रहना बतलाया गया है वहाँ जैन धर्मका मन्तव्य है कि प्रत्येक योग्य आत्मा अपने अध्यवसाय एवं प्रयत्नों द्वारा स्वतन्त्र, पूर्ण एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वर—सर्वज्ञ परमात्मा बन सकता है। जैसे एक छह वर्षका विद्यार्थी 'अ आ इ' सीखता हुआ एक-एक दर्जेको पास करके एम० ए० और डॉक्टर बन जाता है और छह वर्षके अल्प ज्ञानको सहस्रों गुना विकसित कर लेता है, उसी प्रकार साधारण आत्मा भी दोषों और आवरणोंको दूर करता हुआ महात्मा तथा परमात्मा बन जाता है। कुछ दोषों और आवरणोंको दूर करनेसे महात्मा और सर्व दोषों तथा आवरणोंको दूर करनेसे परमात्मा कहलाता है। अतएव जैनधर्ममें गुणोंकी अपेक्षा पूर्ण विकसित आत्मा ही परमात्मा है, सर्वज्ञ एवं ईश्वर है—उससे जुदा एक रूप कोई ईश्वर नहीं है। यथार्थतः गुणोंकी अपेक्षा जैनधर्ममें ईश्वर और जीवमें कोई भेद नहीं है। यदि भेद है तो वह यही कि जीव कर्म-बन्धन युक्त है और ईश्वर कर्म-बन्धन मुक्त है। पर कर्म-बन्धनके दूर हो जानेपर वह भी ईश्वर हो जाता है। इस तरह जैनधर्ममें अनन्त ईश्वर हैं। हम व आप भी कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जानेपर ईश्वर (सर्वज्ञ) बन सकते हैं। पूजा, उपासनादि जैनधर्ममें मुक्त न होने तक ही बतलाई है। उसके बाद वह और ईश्वर सब स्वतन्त्र व समान हैं और अनन्त गुणोंके भण्डार हैं। यही सर्वज्ञवाद अथवा परमात्मवाद है जो सबसे निराला है। त्रिपिटिकों (मज्झिमनिकाय अनु. पृ. ५७ आदि) में महावीर (निग्गंठनातपुत्त) को बुद्ध और उनके आनन्द आदि शिष्योंने 'सर्वज्ञ सर्वदर्शी निरन्तर समस्त ज्ञान दर्शनवाला' कहकर अनेक जगह उल्लेखित किया है।

२ रत्नत्रय धर्म—जीव परमात्मा कैसे बन सकता है, इस बातको भी जैनधर्ममें बतलाया गया है। जो जीव सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्ररूप रत्नत्रय धर्मको धारण करता है वह संसारके दुखोंसे मुक्त परमात्मा हो जाता है।

(क) सम्यक्दर्शन—मूढता और अभिमान रहित होकर यथार्थ (निर्दोष) देव (परमात्मा), यथार्थ वचन और यथार्थ महात्माको मानना और उनपर ही अपना विश्वास करना।

(ख) सम्यक्ज्ञान—न कम, न ज्यादा, यथार्थ, सन्देह और विपर्यय रहित तत्त्वका ज्ञान करना।

(ग) सम्यक्चरित्र—हिंसा न करना, झूठ न बोलना, पर-वस्तुको बिना दिये ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना अपरिग्रही होना। गृहस्थ इनका पालन एकदेश और निर्ग्रन्थ साधु पूर्णतः करते हैं।

३ सप्त तत्त्व—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व (वस्तुभूत पदार्थ) हैं। जो चेतना (जानने-देखनेके) गुणसे युक्त है वह जीवतत्त्व है। जो चेतनायुक्त नहीं है वह अजीवतत्त्व है। इसके पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच भेद हैं। जिन कारणोंसे जीव और पुद्गलका संबंध होता है वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग आस्रवतत्त्व हैं। दूध-पानीकी तरह जीव और पुद्गलका जो गाढ़ सम्बन्ध है वह बन्धतत्त्व है। अनागत बन्धका न होना संवरतत्त्व है और संचित पूर्व बन्धका छूट जाना निर्जरा है और सम्पूर्ण कर्मबन्धनसे रहित हो जाना मोक्ष है। मुमुक्षु और संसारी दोनोंके लिए इन तत्त्वोंका ज्ञान करना आवश्यक है।

४ कर्म—जो जीवको पराधीन बनाता है—उसकी स्वतंत्रतामें बाधक है वह कर्म है। इस कर्मकी वजहसे ही जीवात्मा नाना योनियोंमें भ्रमण करता है। इसके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ भेद हैं। इनके भी उत्तर भेद अनेक हैं।

५ अनेकान्त और स्याद्वाद—जैन धर्मको ठीक तरह समझने-समझाने और मीमांसा करने-करानेके लिए महावीरने जैनधर्मके साथ ही जैन दर्शनका भी प्ररूपण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) अनेकान्त—नाना धर्मरूप वस्तु अनेकान्त है।

(ख) स्याद्वाद—अपेक्षासे नाना धर्मोंको कहनेवाले वचनप्रकारको स्याद्वाद कहते हैं। अपेक्षावाद, कथंचित्वाद आदि इसीके नाम हैं।

इन और ऐसे ही और अनेक सिद्धान्तोंका महावीरने प्रतिपादन किया था, जो जैन शास्त्रोंसे ज्ञातव्य हैं।

अन्तमें ७२ वर्षकी आयुमें कार्तिक वदी अमावस्याके प्रातः महावीरने पावासे निर्वाण प्राप्त किया, जिसकी स्मृतिमें जैन-समाजमें वीर-निर्वाण संवत् प्रचलित है और जो आज २४७८ चल रहा है।

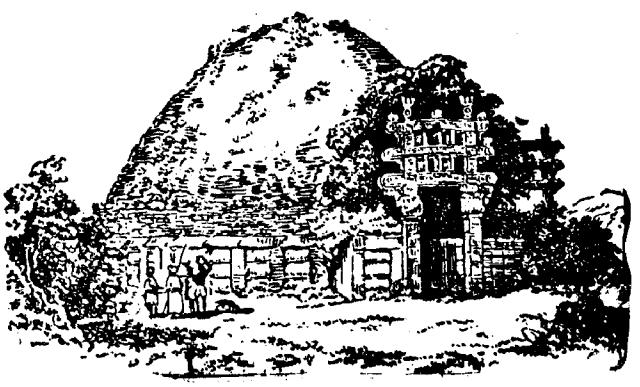

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org